# भारतीय कृषि क्रांति के कुछ प्रश्न

हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आन्दोलन में नव जनवादी क्रांति की मंजिल को स्वीकार करने वाले संगठनों का मानना है कि हमारे देश की कृषि व्यवस्था में अभी भी मूलतः सामंती उत्पादन संबन्ध ही प्रभुत्वकारी है। ये सामंती उत्पादन सम्बन्ध ही कृषि के विकास के मार्ग में मुख्य अवरोध हैं। सामंती उत्पादन सम्बन्धों के कारण ही किसानों की दुर्दशा है। इन सम्बन्धों की वजह से ही किसान जनसमुदाय का भयंकर शोषण और उत्पीड़न होता है। देश की अधिकांश जमीन पर मुट्ठीभर जमींदारों और पूर्व राजाओं का नियंत्रण है जबकि किसानों के पास या  तो जमीन है ही नहीं या बहुत कम है। गरीबी की हालत की वजह से ये किसान सूदखोरों के चंगुल में फंस जाते हैं और सूदखोर इन किसानों का निरंतर खून चूसते रहते हैं। किसानों की जमीन से बेदखली आम घटनाएं हैं।

अपनी कृषि क्रांति की मंजिल के सूत्रीकरण से ही ये संगठन अपने लिए रणनीतिक और रणकौशलात्मक नारे सूत्रित करते हैं ताकि कृषि क्रांति को सम्पन्न करके सामंती सम्बन्धों के खत्म किया जा सके और किसानों के होने वाले सामंती शोषण और उत्पीड़न से उन्हें मुक्ति दिलायी जा सके। उन्हें सूदखोरों के चंगुल से निजात दिलायी जा सके। इन संगठनों का मानना है कि इसके लिए हमें जमीदारों की व ऐसी ही अन्य जमीन को जब्त करके उसे किसानों और खेतीहर सर्वहारा में वितरित कर देना चाहिये अर्थात 'जमीन जोतने वाले की' नारे को लागू करना चाहिये। इस क्रांति को अंजाम देने के लिए धनी किसानों सहित किसानों के सभी हिस्सों को गोलबन्द करना चहिये। ये संगठन मानते हैं कि धनी किसानों को सामंतवाद विरोधी संघर्ष में अपने साथ लाने का प्रयास करना चाहिये। हालांकि वे जानते हैं कि ये ढुल–मुल सहयोगी होंगे।

हम इस आलेख में नव जनवादी क्रांति की मंजिल को स्वीकार करने वाले संगठनों द्वारा सूत्रित इन नारों/प्रश्नों के आज के संदर्भ में महत्व पर विवेचना करेंगे कि आज ये नारे किस हद तक प्रासंगिक हैं और किस हद तक अप्रासंगिक हैं। इस आलेख में हम ऐसे संगठनों की उन विसंगतियों को भी उजागर करने का प्रयास करेंगे जो स्वयं नव जनवादी क्रांति के दृष्टिकोण से भी उचित नहीं हैं जैसे खेतीहर सर्वहारा के प्रति हमें क्या दृष्टिकोण अपनाना चाहिये, धनी किसानों के प्रति सर्वहारा पार्टी का क्या दृष्टिकोण हो और इसी प्रकार छोटे किसानों के प्रति कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को क्या रूख अपनाना चाहिये।

हम इस आलेख में नव जनवादी क्रांति की लाइन को मानने वाले संगठनों के इस दोहरेपन को भी उजागर करेंगे जिसमें सिद्धान्ततः कृषि क्रांति की बात कहते हुए भी वे व्यवहारतः अधिकांश मामलों में ऐसे मुद्दे उठाते हैं जिनकी सामंती उत्पादन संबन्धों के तहत नगण्य ही मौजूदगी बनती है अर्थात ये संगठन

सिद्धान्त के तौर पर सामंती उत्पादन सम्बन्धों के उन्मूलन के नारे/प्रश्न सूत्रित करते हैं किंतु वे व्यवहार में ऐसे नारे और मांगें उठाते हैं जिनकी प्रकृति पूंजीवादी है।

हम यहां यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इन संगठनों के द्वारा सामंती उत्पादन सम्बन्धों के प्रभुत्व को स्वीकारते हुए भी देश के अलग–अलग हिस्सों में, कृषि में कम या अधिक मात्रा में, पूंजीवादी उत्पादन पद्धति की मौजूदगी को स्वीकार करते हैं। कुछ संगठन खुले आम इन सम्बन्धों को इसी रूप में सूत्रित करने का साहस तमाम किन्तु–परन्तु के साथ करते हैं तो कुछ ऐसा करने का भी साहस नहीं दिखाते हैं। हालांकि अन्तिम तौर पर ये सभी संगठन भारतीय समाज को अर्द्ध–सामंती मानते हैं। हम इस आलेख में नव जनवादी क्रांति की लाइन को स्वीकार करने वाले संगठनों के बीच के फर्क पर कोई चर्चा नहीं करेंगे इसके बजाय हम आम उपर्युक्त प्रश्नों पर ही अपनी बात केन्द्रित करेंगे जिन पर इन संगठनों के दस्तावेजों में आम तौर पर साम्य पाया जाता है।

# I

नव जनवादी क्रांति की लाइन को मानने वाले हमारे साथियों का मानना है कि देश में आज भी अर्द्ध सामंती उत्पादन सम्बन्ध ही कायम हैं इसलिए आज कृषि क्रांति की आवश्यकता है। कृषि क्रांति का अर्थ है जमींदारों, मठों आदि की जमीन को जब्त करके उसे किसानों के बीच पुनर्वितरित करना तथा सामंतों के प्रभुत्व का खात्मा करना। इन संगठनों का मानना है कि देश में गरीब किसानों और भूमिहीन किसानों व मजदूरों को जमीन वितरित करके ही उनकी समस्या का समाधान किया जा सकता है। इसलिए इन संगठनों का कार्यक्रम है 'जमीन जोतने वाले की'। हमें आज इन संदर्भों में इस नारे की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना चाहिये कि आज यह नारा कितनी प्रासंगिकता रखता है।

इसके लिए पहले हम इस सम्बन्ध में कुछ संगठनों के दस्तावेजों से उद्धरण देंगे कि वे इस पूरी समस्या को कैसे देखते हैं और उनका कार्यक्रम या नारा क्या कहता है,

> "देश में बढ़ते किसान आन्दोलनों के संदर्भ में किसान जनता को भ्रमित करने के लिए शासक वर्गो ने इस तरह से भूमि सुधार कानून बनाये तथा लागू किये जिन्होंने दलाल बड़े पूंजीपतियों व बड़े जमींदारों तथा साथ ही साथ साम्राज्यवादियों की सेवा की। यद्यपि इन भूमि सुधारों ने बिचौलियों की अनेक परतों को खत्म किया **परन्तु जमीन जोतने वालों को नहीं मिली** जो जमीदारों के हाथों में केन्द्रित रही। साम्राज्यवादी तथा दलाल पूंजी की घुसपैठ व शोषण को बढ़ाने के लिए उनके संरक्षण में कर्जों तथा विभिन्न योजनाओं के जरिये खेती के पूंजीवादी तरीकों को प्रोत्साहित किया गया तथा विभिन्न प्रांतों के **कुछ क्षेत्रों में अर्द्ध–सामंती भूमि सम्बन्धों को बदले बिना इन तरीकों को इस्तेमाल में लाया गया परंतु अर्द्ध–सामंती भूमि सम्बन्ध संशोधित रूप में आज भी हावी हैं।** यद्यपि, कृषि के उन्नत तरीकों का काफी फैलाव हुआ है, इनका इस्तेमाल कुछ ही क्षेत्रों में उल्लेखनीय हुआ है

जबकि अधिकांश क्षेत्रों में खेती का पुराने तरीके से किया जाना जारी है। (सी.पी. आई.(एम. एल.) न्यू डेमोक्रेसी का 1996 का कार्यक्रम, पृष्ठ.7.8, जोर हमारा)

"...सभी राज्यों में पार्टी की मुख्य कार्य दिशा सचेत रूप से किसानों को आन्दोलन के लिए संगठित करने तथा सरकार व जमींदारों के खिलाफ **विशाल किसान जन समूह को एकजुट करने की होनी चाहिये। हालांकि गरीब किसानों तथा खेत मजदूरों के संघर्ष उनके फौरी मुद्दों पर शुरू होते है।, हमें इन्हें विभिन्न प्रकार की भूमि के वितरण और अन्ततः जमींदारो की भूमि के वितरण की दिशा में बढ़ाना चाहिए।** इन संघर्षों का मुख्य लक्ष्य गांव के स्तर पर जमींदारों के राजनैतिक प्रभुत्व को खत्म करने तथा किसानों के राजनैतिक प्रभुत्व की स्थापना होना चाहिये ...।" ('राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा हमारे कार्य', पार्टी कांग्रेस 1996 द्वारा पारित, सी.पी.आई. (एम.एल.) न्यू डेमोक्रेसी, पृष्ठ–56)

सी.पी.आई.(एम.एल.) न्यू डेमोक्रेसी द्वारा कही गयी उपरोक्त बातों से निम्न बातें निकलती हैं। पहली कि सरकार ने अनेक भूमि सुधार के कार्यक्रम लिये किन्तु इसके बावजूद भूमि जोतने वालों को नहीं मिली। 'न्यू डेमोक्रेसी' यह मान कर चलती है कि भूमि का बंटवारा हर स्थिति में अपरिहार्य है। दूसरा इस पार्टी का कहना है कि कृषि में पूंजीवादी तौर–तरीकों का उपयोग हो रहा है तथा इनका फैलाव भी हुआ है, इसके बावजूद वह कहती है कि उत्पादन सम्बन्ध अर्द्ध–सामन्ती हैं। आखिर यह कैसे सम्भव है कि पूंजीवादी तौर–तरीकों के इस्तेमाल व उनके फैलाव के बावजूद उत्पादन सम्बन्धों में कोई बदलाव न हो। तीसरा, गरीब किसानों और खेत मजदूरों के संघर्ष उनके फौरी मुद्दों पर शुरू होते हैं इसका अर्थ है कि वे सीधे जमीन के लिए शुरू नहीं होते हैं बल्कि उन्हें पार्टी को भूमि वितरण की दिशा में बढ़ाने की जरूरत होती है। चौथी बात यह है कि जमीन न सिर्फ भूमिहीन व गरीब किसानों में वितरित की जायेगी बल्कि खेत मजदूरों में भी बांटी जायेगी।

अब हम 'पीपुल्स वार' के दस्तावेजों को देखते हैं,

"किसान विद्रोहों द्वारा बार–बार प्रदर्शित जनता के गुस्से से घबराकर दलाल नौकरशाह बुर्जुआ के नेतृत्व में शासक वर्ग ने 1947 के बाद भूमि सम्बन्धों में कुछ बदलाव किये। लेकिन **किसानों की विशाल बहुसंख्या की युगों पुरानी अपनी जमींन की आकांक्षा अपूर्ण ही रही।** मुआवजा देकर राजे–रजवाड़ों व जमीन पर भूमि काश्तकारी की बिचौलिये वाली व्यवस्था को खत्म कर दिया गया, पर जमीन के मालिकाने में इस तरह हेर–फेर किया गया कि जमीन पर एकाधिकार– कानूनी व गैर–कानूनी – को सुनिश्चित किया जा सके और ग्रामीण गरीबों की विशाल बहुसंख्या जमीन से वंचित रहे ...।" (नवीं कांग्रेस द्वारा स्वीकार किया गया कार्यक्रम, सी.पी.आई (एम.एल) पीपुल्स वार; पृष्ठ.9, अनुवाद और जोर हमारा,)

''1947 में सत्ता हस्तांतरण के समय से ही भारतीय शासक वर्ग साम्राज्यवाद के साथ मिलकर 'जमीन जोतने वाले की' के आधार पर क्रांतिकारी भूमि सुधार के स्थान पर वैकल्पिक विकास के मॉडलों को प्रचलित करने की बेतहाशा कोशिश करता रहा है। अनेक सुधार कार्यक्रम – सामुदायिक विकास कार्यक्रम, ग्रामीण सहकारिता, गहन कृषि विकास

कार्यक्रम (आई.ए.डी.पी.) आदि फोर्ड और रॉकफेलर फाउन्डेशन, विश्व बैंक और अन्य साम्राज्यवादी एजेंन्सियों की सहायता से उठाये गये हैं और अंत में, 1960 के अंत तक लाल क्रांति के विकल्प के तौर पर हरित क्रांति को प्रस्तुत किया गया जिसमें की श्60 के दशक के उत्तरार्ध में भारत के विस्तृत ग्रामीण क्षेत्रों में साम्राज्यवादी वस्तुओं जैसे फार्म मशीनरी, रासायनिक खाद, उच्च उत्पादकता किस्म बीज (एच.वाई.वी.), कीटनाशक आदि, जिनसे साम्राज्यवादी बाजार भरे हुए थे, उनके लिए भारत में सुरक्षित बाजार उपलब्ध कराया जा सके, नासूर बन चुके तीव्र खाद्यान्न संकट को हल किया जा सके और कृषि क्षेत्र में अधिक निवेश व सिंचाई के लिए ग्रामीण सामंतों व जमीदारों द्वारा संस्थागत ऋण की मांग को पूरा किया जा सके।" (वही, पृष्ठ.10)

नव जनवादी क्रांति के बाद पीपुल्स वार अपने लिए निम्न कार्यक्रम सूत्रित करता है,

"'जमींदारों और धार्मिक संस्थानों की सम्पूर्ण जमीन को जब्त करेगी और उसे जमीन जोतने वाले की' के सिद्धान्त पर खेतीहर मजदूरों और गरीब किसानों के बीच पुनर्वितरित करेगी, खेतीहर मजदूरों, गरीब व मध्यम किसानों के सभी कर्जों को रद्द करेगी कृषि उत्पादों की लाभकारी कीमतों को सुनिश्चित करेगी, और जहां भी सम्भव हो कृषि सहकारिता के विकास को बढ़ावा देगी और प्रोत्साहित करेगी। इस प्रकार कृषि को नींव के रूप में रखते हुए यह एक मजबूत औद्योगिक अर्थव्यवस्था का निर्माण करेगी। (वही, पृष्ठ–22)

हम यहां यह भी स्पष्ट कर दें कि पीपुल्स वार अपने कार्यक्रम में और इसी कांग्रेस के अन्य दस्तावेजों में भी यह कहती है कि जमींदारों में से पूंजीवादी जमींदारों का एक वर्ग पैदा हुआ है जो कृषि में सभी आधुनिक तौर–तरीकों का इस्तेमाल कर रहा है।

उपर्युक्त उद्धरणों से साफ है कि पीपुल्स वार जमीन का बंटवारा इसलिए करना चाहती है कि क्योंकि किसानों की जमीन की भूख शांत करनी है। वरना उसके कथित जमींदारों का एक हिस्सा जिसकी जमीन वह जब्त करना चाहती है तो वैसे ही पूंजीवादी खेती करता है। दूसरा, न्यू डेमोक्रेसी की भांति पीपुल्स वार भी न सिर्फ गरीब और भूमिहीन किसानों में बल्कि खेतीहर मजदूरों में भी जमीन का बंटवारा करना चाहती है।

अब हम एक और संगठन सी.पी.आर.सी.आई. (एम.एल) के दस्तावेजों के कुछ हिस्सों को देखेंगे।

"इसी प्रकार, "भूमि सुधार" के कानून बनाने और लागू करने से – जमींदारी उन्मूलन, काश्तकारी अधिकारों के सुनिश्चित करने, जमीन के मालिकाने की हदबन्दी करने, चकबन्दी और सहकारी ऋणों व बाजार की संस्थाओं से – किसी भी तरह मेहनतकश किसान समुदाय के पक्ष में भूमि सम्बन्ध नहीं बदले। यह सब मुख्यतया उस समय मौजूद जालिम जमींदारों की मदद कसने के लिए लागू किया गया जिससे कि उनकी आर्थिक शक्ति को मजबूत किया जा सके, हालांकि जमींदार वर्ग की बनावट में किंचित औपचारिक परिवर्तन किये गये और कुछ किसान परिवारों को नाम मात्र की जमींन वितरित की गयी। फिर भी, किसान समुदाय के हिस्से में

कुछ समय के लिए शांतिपूर्ण जनवादी परिवर्तन और उपलब्धि के बारे में इस सुधार के आधिकारिक नारे ने भ्रम पैदा किया।" (Programme for Peoples Democratic Revoulation in India (draft) C.P.R.C.I.(ML) 1995, page-9, अनुवाद हमारा)

"जनता का जनवादी राज्य जमींदारों की जमीन बिना किसी मुआवजे के जब्त करके और गरीब व भूमिहीन किसानों (खेतीहर मजदूरों सहित) के बीच उसे वितरित करके कृषि क्रांति को सम्पन्न करेगा और सामंतवाद का उन्मूलन करेगा।" (वही,,पृष्ठ–27)

उपर्युक्त उद्धरणों में सी.पी.आर.सी.आइ. (एम.एल) भी कृषि प्रश्न को उसी पुराने फ्रेमवर्क में रख कर देखती है। वह तो यहां तक देखने से इंकार कर देती है कि सभी भूमि सुधार कार्यक्रमों ने अंततः सामन्ती उत्पादन सम्बन्धों को बदलने में ही मदद की। यह पार्टी संगठन जमींदार वर्ग की बनावट में तो परिवर्तन की बात करता हैं किन्तु ठीक–ठीक उसे परिभाषित नहीं करता है। 'जमीन जोतने वाले की' के नारे के क्रियान्वयन में उसका व अन्य नव जनवादी क्रांति की लाइन मानने वाले संगठनों में पूरी तरह साम्यता दिखाई देती है।

इन सभी संगठनों के दस्तावेजों में इस बात का भरपूर जिक्र है कि जमींदार या सामंत आज आधुनिक तौर–तरीकों का व्यापक इस्तेमाल कर रहे हैं। वे खेतीहर मजदूरों से अपनी जमींन पर खेती करवाते हैं। हालांकि इन वर्णनों में सामंतवाद की छोंक पर्याप्त मात्रा में मिलायी जाती है। ये संगठन इन जमींदारेां/सामंतों को पूंजीवादी भूस्वामी नहीं कहते हैं। इसका कारण यह है कि एक तो जिस प्रक्रिया से यह पूंजीवादी भूस्वामी बने हैं ये संगठन उस प्रक्रिया को अपने दस्तावेजों में कहीं नहीं स्वीकारते कि क्रांतिकारी रूपान्तरणों के बिना भी कृषि में पूंजीवाद का विकास हो सकता है। यह सच है कि इन तथाकथित जमींदारेां के पास व्यापक मात्रा में जमीन हैं और बहुसंख्यक किसानों के पास नहीं है। किंतु जमीन का एकाधिकार होना तथाकथित जमीदारों/सामंतों के पास ज्यादा जमींन होना मात्र ही जमीन के बंटवारे को आधार प्रदान नहीं करते हैं। कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को खुद को पूंजीवादी विकास के किसी खास परिणाम से नहीं बांधना चाहिए। यदि जुंकर या प्रशियाई तरीके के सुधारों के द्वारा भारतीय कृषि का चरित्र बदल गया है तो उसे संज्ञान में लेना चाहिये जैसा कि प्रशियाई रास्ते से स्पष्ट है कि पूंजीवादी विकास भूस्वामी अर्थव्यवस्था को शीर्ष में रख कर, जमींदारों को अनेक तरीकों से इस बात का अवसर देता है कि वे अपना रूपांतरण करें। पीपुल्स वार,न्यू डेमोक्रेसी और अन्य संगठन भी जब अपने दस्तावेजों में सरकार द्वारा चलाये गये भूमि सुधारों, कृषि कार्यक्रमों और योजनाओं के द्वारा यह बताते हैं कि इसका फायदा किसानों को नहीं मिला, किसानों को जमीनें नहीं मिली बल्कि इसका फायदा भूस्वामी वर्ग को मिला, तो यहां तक ठीक है। किंतु उन्हें समझना चाहिये कि प्रशियाई रास्ता किसानों को जमीनें नहीं देता है। इन संगठनों को प्रशियाई रास्ते से होने वाले विकास के परिणामों को भी स्वीकार करना चाहिये कि कृषि व्यवस्था में प्रशियाई रास्ते से पूंजीवादी व्यवस्था में संक्रमण हो गया है। और अब सामंतवाद के अवशेष ही बचे हुए हैं। अब कृषि में मौजूद पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को बदलने के लिए समाजवादी क्रांति की जरूरत है। यह समाजवादी क्रांति कृषि व्यवस्था में मौजूद सामंती अवशेषों को भी उपोत्पाद के तौर पर पूरा कर देगी।

किसानों को जमीन मिल सकती थी यदि भारतीय कृषि में परिवर्तन फ्रांसीसी रास्ते से हुए होते। किंतु यदि फ्रांसीसी रास्ते से कृषि का रूपान्तरण सम्भव नहीं हुआ और किसानों को जमीनें नहीं मिली तो इससे यह निष्कर्ष निकालना कि अभी अर्द्ध–सामन्ती व्यवस्था है, कि अभी भी "जमीन जोतने वाले की" के नारे के तहत आम भूमि पुनर्वितरण का कार्यभार बनता है, हास्यास्पद है। इस मामले में हम लेनिन को उद्धृत करेंगे कि यदि प्रशियाई रास्ते के द्वारा कृषि में पूंजीवाद का विकास सम्पन्न हो जाये तो हमें क्या करना चाहिये।

> "आगे बढ़ें! क्या होगा कि यदि जन समुदाय के संघर्ष के बावजूद प्रशियाई रास्ते पर स्तॉलिपिन की नीति लम्बे समय तक सफलतापूर्वक जारी रहती है? तब रूस की कृषि व्यवस्था पूर्णतया पूंजीवादी हो जायेगी, बड़े किसान लगभग सारी एलाटमेंट जमीन पर कब्जा कर लेंगे, कृषि पूंजीवादी हो जायेगी और पूंजीवाद के अन्तर्गत कृषि प्रश्न का कोई भी "समाधान" – आमूल पवितर्नवादी या गैर– आमूल परिवर्तनवादी – सम्भव नहीं रह जायेगा। तब मार्क्सवादी, जो अपने प्रति ईमानदार हैं, स्पष्ट तौर पर और खुले तौर पर तमाम "कृषि कार्यक्रम" को पूर्णतया कूड़े के ढेर में फेंक देंगे और जन समुदाय से कहेंगे : रूस को जुंकर किस्म का नहीं बल्कि अमरीकी पूंजीवाद देने के लिए मजदूरों ने वह सब किया जो वे कर सकते थे। सर्वहारा वर्ग की सामाजिक क्रांति में शामिल होने के लिए मजदूर अब आपका आह्वान करते हैं, क्योंकि स्तॉलिपिन भावना में कृषि सवाल के "समाधान" के **पश्चात्** किसान समुदाय के जीवन की आर्थिक दशाओं में गम्भीर परिवर्तन लाने में समर्थ और **कोई दूसरी क्रांति नहीं हो सकती"**(लेनिन, श्व्द जैम ठमंजमद ज्तंबाश्ए खण्ड.15, पृष्ठ. 45, बवससमबजमक वूतोए अनुवाद हमारा, जोर मूल में)

लेनिन हमें बताते हैं कि जब सच्चे मार्क्सवादियों को कृषि कार्यक्रम को कूड़े के ढेर में फेंक कर जनसमुदाय को सर्वहारा क्रांति में शामिल करने के लिए आह्वान करना चाहिये। किन्तु हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी इसके बजाय किसानों की जमीन की आकांक्षा को "शांत" करना चाहते हैं और इसके लिए सामंतवाद विरोधी क्रांति सम्पन्न करना चाहते हैं। वे किसानों की जमीन की आकांक्षा को "पूरा" किये बिना सर्वहारा क्रांति का आह्वान नहीं करना चाहते।

अब हम जमीन के आम पुनर्वितरण को एक दूसरे दृष्टिकोण से देखते हैं कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आम भूमि पुनर्वितरण क्यों चाहते हैं? क्या जमीन का बॅटवारा हर परिस्थिति में अपरिहार्य है? कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को जमीन के पुनर्वितरण का प्रश्न इसलिए नहीं उठाना चाहिये कि किसानों की जमीन की भूख है या कि किसान समुदाय के पास जमीन नहीं है इसलिए उसे जमीन मिलनी ही चाहिये। ऐसा सोचना किसानों का दृष्टिकोण तो हो सकता है किंतु कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों का नहीं। किसानों की जमीन की भूख को शान्त करना या किसानों के पास जमीन न होने पर जमीन के पुनर्वितरण की मांग करना खुद को निम्न–बुर्जुआ किसान मानसिकता के स्तर पर उतार लाना होगा। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी जब भूमि के पुनर्वितरण की मांग या समर्थन करते हैं उसके लिए कार्यक्रम बनाते हैं तो इसलिए कि जमीन का पुनर्वितरण उत्पादन सम्बन्धों को बदल डालता है। इससे उत्पादन शक्तियों के विकास का रास्ता खुल

जाता है। क्योंकि इससे सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग (मय किसानों के) के बीच अन्तर्विरोध जल्दी ही सतह पर आ जाते हैं। और समाजवाद की ओर कदम बढ़ाने हेतु वस्तुगत परिस्थितियों के विकास को मौका मिलता है। किंतु यदि जमीन के बंटवारे का प्रश्न उत्पादन सम्बन्धों में कोई बदलाव नहीं लाता है तो यह कार्यक्रम कोई क्रांतिकारी चरित्र नहीं रखता है। ऐसे में इस प्रकार का कार्यक्रम एक सुधारवादी कार्यक्रम में तबदील हो जाता है। ऐसा सुधारवाद फायदे की चीज है या नहीं यह भिन्न प्रश्न है।

किंतु हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों ने इसी मार्क्सवादी रुख का परित्याग कर दिया है। उनके लिए जमीन का पुनर्वितरण उत्पादन सम्बन्धों से नहीं किसानों की जमींन की भूख से तय होता है। किंतु छोटे किसानों की जमीन की भूख को जमीन के पुनर्वितरण से भी शांत नहीं किया जा सकता है। जब तक निजी सम्पत्ति की व्यवस्था मौजूद है तब तक निजी सम्पत्ति को लेकर आकर्षण रहेगा। भूमि सम्पत्ति का एक रूप है और ऐसे में इस सम्पत्ति की प्राप्ति की आकांक्षा को निजी सम्पत्ति की व्यवस्था के रहते कैसे खत्म किया जा सकता है। कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को अपने लिए कार्यभार इसी दृष्टिकोण पर आधारित करने चाहिये कि कोई कार्यक्रम या नारे आर्थिक सम्बन्धों में रूपान्तरण करते हैं या नहीं।

हम ऊपर कह आये हैं कि इन सभी संगठनों के दस्तावेजों में इस बात का खूब जिक्र मिलता है कि उनके जमींदार आधुनिक तौर–तरीकों का व उजरती मजदूरों को रखकर खेती करते हैं। चूंकि इन तथाकथित जमींदारों के पास खेती योग्य जमीन की बड़ी मात्रायें हैं बल्कि शेष किसान जनता के पास या तो बहुत कम जमींनें हैं या बिल्कुल नहीं। सो हमारे ये क्रांतिकारी साथी उस जमींन को किसानों में वितरित करना चाहते हैं। यहां यह बात निहित है कि चूंकि ये भूमि की ज्यादा बड़ी मात्रायें हैं इसलिए इनका वितरण होना चाहिए। यह गलत दृष्टिकोण है। बंटवारे का प्रश्न इससे तय नहीं होता कि ये भूमि की बड़ी मात्रायें हैं। बल्कि इससे तय होना चाहिए कि क्या ये बड़ी जमीनें सामंती संबंधों में बंधकर जोती जा रही है या पूंजीवादी संबंधों के तहत। वे सामंती संबंधों का नमक, मिर्च मसाले के साथ ही जिक्र करते हैं। अन्यथा दूसरी बात गायब ही रहती है। जमीन का व्यापक संकेन्द्रण तो पूंजीवाद में भी होता है और पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया का यह परिणाम भी होता है। ऐसे में यदि मात्र व्यापक संकेन्द्रण वाली जमींनों को बांटने का प्रश्न निरपेक्ष तौर पर लिया जायगा तो यह गलत होगा। संकेन्द्रण वाली जमींनों को बांटना जबकि उनमें पूंजीवादी उत्पादन के आधार पर काश्त की जा रही हो; आगे के बजाय पीछे का कदम होगा। कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को आगे के पग उठाने चाहिये अर्थात ऐसी जमीनों को वितरित करने के बजाय उनका समाजीकरण करना चाहिये।

हम इस बात को पुष्ट करने के लिए यह कहना चाहते हैं। कि आज भारतीय समाज में 90 प्रतिशत के लगभग भूमि किरायेदारी सम्बन्धों के दायरे से बाहर जा चुकी है। यह खुदकाश्त है अर्थात् या तो मालिक स्वयं इस पर अपनी मेहनत से खेती करते हैं या फिर भूस्वामी उजरती श्रम के शोषण द्वारा अपनी देख–रेख में इस पर खेती करवाते हैं। ऐसी हालत में "जमीन जोतने वाले की" के नारे की क्या प्रासंगिकता बच जाती है।

हम यहां यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी यदि बड़ी जमीनों को किसानों में पुनर्वितरित करके सबको समान करना चाहते हैं (निश्चय ही वे इन शब्दों में कहते नहीं है हालांकि

उनकी बातों से ऐसा आशय निकलता है) तो यह निम्न–पूंजीवादी समाजवाद के अलावा और कुछ नहीं है। ऐसा कोई पूंजीवाद नहीं हो सकता है जहां पूंजीवादी विकास के परिणामस्वरूप जमीनों का संकेद्रण न हो जहां किसान तबाह और बरबाद होकर सर्वहारा की पांतों में शरीक न हो। निजी स्वामित्व की व्यवस्था के तहत ऐसा होना अपरिहार्य है। किसानों की जमीन से बेदखली अनिवार्य है। किसानों की बेहतरी सिर्फ समाजवादी व्यवस्था ही दे सकती है।

परिणामतः हम यह कहना चाहते है कि "जमीन जोतने वाले की" का नारा अब अपनी क्रांतिकारी भावना खो चुका है, इसकी प्रासंगिकता समाप्त हो चुकी है, पुराने कृषि कार्यक्रम को कूड़े के ढेर में फेंकने का समय आ गया है। हमें आज भूमि के समाजीकरण और सहकारीकरण के नारे देने चाहिए। विकास की इस अवस्था में आज यही नारे क्रांतिकारी नारे बनते हैं।

किंतु ये संगठन गरीब किसानों और भूमिहीन किसानों में ही जमीन के वितरण की वकालत नहीं करते वरन् वे खेतिहर सर्वहारा में भी जमीन का पुनर्वितरण करना चाहते हैं। यदि किसी समाज में खेतिहर सर्वहारा बहुत थोड़ी गिनती में हों तो वहां भूमि–सुधार के तहत उन्हें अपवाद स्वरूप जमीन दी जा सकती है। परंतु हमारे देश में जहां लगभग 11 करोड़ खेतिहर सर्वहारा हों वहां उन्हें किसानों में बदलने की चेष्टा करना एक प्रतिगामी कार्यवाही है। मानव इतिहास के एक अग्रिम वर्ग को एक पिछड़े वर्ग में तबदील करने की कार्यवाही है। इतना ही नहीं ये संगठन खेतिहर सर्वहारा को एक वर्ग के बतौर सूत्रित तक नहीं करते बल्कि उसे भूमिहीन किसानों के साथ गड्ड–मड्ड करते है। देखें कैसे,

> "यद्यपि पार्टी मध्यम व धनी किसानों समेत किसानों के सभी हिस्सों को गोलबंद करती है, किसान आंदोलन का मुख्य आधार खेतिहर मजदूर (भूमिहीन किसान) व गरीब किसान होने चाहिए।" ;सी.पी.आई. (एम.एल) न्यू डेमोक्रेसी के दस्तावेज कार्यक्रम, रास्ता, संविधान से, पृष्ठ.27)
>
> "इन संघर्षों का संचालन करते समय, हमें खेतिहर मजदूरों अर्थात् भूमिहीन किसानों गरीब व मध्यम किसानों, विशेषकर पहले दो पर निर्भर करना चाहिए।"
>
> (वही, पृष्ठ.25)

यदि न्यू डेमोक्रेसी खेतिहर सर्वहारा और भूमिहीन किसानों को पयार्यवाची के तौर पर इस्तेमाल करती है तो पीपुल्स वार खेतिहर सर्वहारा को अर्द्ध–सर्वहारा की श्रेणी में डालकर खेतिहर सर्वहारा को एक वर्ग के तौर पर ही गायब कर देता है। देखें कैसे,

''**2. खेतिहर मजदूर एवं गरीब किसानः**

> "साधारणतः भूमिहीन किसानों (अर्द्ध–सर्वहारा) के पास अपने खुद के खेती के औजार व खुद की जमीन नहीं होती। वे या तो पूर्णतया या मुख्य रूप से अपनी श्रमशक्ति बेचकर जीवन निर्वाह करते हैं।"
>
> "गरीब किसानों में से कुछ के पास नाम मात्र के लिए जमींन होती है या वे लगान पर थोड़ी सी जमीन ले लेते हैं। इस प्रकार कुछ के पास नाम मात्र के लिए खेती के औजार होते हैं। जमीन का लगान व ब्याज चुकाने के साथ–साथ वे अपनी श्रमशक्ति भी बेचते हैं

और इस प्रकार उनका इन सब तरीकों से शोषण होता है।" (पीपुल्स वार की नवीं (2001) कांग्रेस द्वारा स्वीकृत रणनीति और रणकौशल दस्तावेज से, पृष्ठ, 9.10)

खेतिहर सर्वहारा को इस तरह परिभाषित करना गलत है। इससे क्रांति की रणनीति तय करने में गलत निष्कर्षों तक पहुंचा जाता है।

यहां हम माओ द्वारा वर्गों के किये गये विश्लेषण में देखते हैं कि खेतिहर सर्वहारा और गरीब किसानों की (जिनकी वे तीन श्रेणियां गिनाते है) को अलग–अलग श्रेणी में रखते है।

''**4. गरीब किसान**

कुछ गरीब किसानों के पास खेती की जमीन का सिर्फ एक हिस्सा ही अपना खुद का होता है और उनके पास खेती–औजार भी पूरे नहीं होते; अन्य गरीब किसान ऐसे होते हैं जिनके पास जमींन बिल्कुल नहीं होती तथा खेती–औजार अपूर्ण मात्रा में होते हैं। आम तौर पर गरीब किसानों को खेती की जमीन लगान पर लेनी पड़ती है, और दूसरों को लगान या सूद देकर अथवा अपने श्रम को अंशतः भाड़े पर उठाकर उन्हें दूसरों के शोषण का शिकार बनना पड़ता है।

''**5. मजदूर**

आमतौर पर मजदूरों (जिनमें खेत मजदूर भी शामिल हैं) के पास जमीन या औजार बिल्कुल नहीं होते। उनमें से कुछ ही लोग ऐसे होते हैं जिनके पास थोड़ी जमीन और बहुत थोड़े औजार होते हैं। मजदूर लोग पूर्णतः या मुख्यतः अपनी श्रमशक्ति बेचकर जीविका कमाते हैं।" (माओ, 'देहाती क्षेत्रों में वर्ग विश्लेषण', माओ की संकलित रचनाएं, खण्ड–1, पृष्ठ–234.235)

उपर्युक्त उद्धरणों में इन संगठनों और माओ द्वारा कही गयी बातों की तुलना से स्पष्ट है कि ये संगठन भूमिहीन किसान और खेतीहर मजदूर के वर्गीकरण में किस हद तक गलत हैं। अपनी इसी गलत समझ के आधार पर वे खेतीहर सर्वहारा को भी जमीन बांटने की बात करते लगते हैं।

ये संगठन न सिर्फ इस प्रकार का घालमेल करते हैं बल्कि पीपुल्स वार जैसे संगठन तो यह भी मानते हैं कि पूंजीवादी विकास वाले क्षेत्रों में स्वतंत्र मजदूर वर्ग विकसित हुआ है; अपने वर्णनों में अन्य संगठन भी यह बखान करते हैं कि देश के कुछ हिस्सों में कृषि आधुनिक तौर– तरीकों से और उजरती मजदूरों को नियोजित करके हो रही है (यह अलग बात है ऐसी खेती पूरे देश में हो रही है जिसे वे देखना नहीं चाहते), फिर भी उनके पास इस खेतीहर सर्वहारा के लिए कोई विशेष रणनीति और कार्यक्रम नहीं है। यह पुनः इस बात को दर्शाता है कि इन संगठनों ने खुद को किस हद तक किसान दृष्टिकोण के करीब पहुंचा दिया है और सर्वहारा दृष्टिकोण से किस हद तक दूर चले गये हैं। यह इसके बावजूद है कि न्यू डेमोक्रेसी, पीपुल्स वार व अन्य संगठनों के दस्तावेजों में जगह–जगह इस बात का उल्लेख है किसान तबाह और बरबाद हो कर जमीन से बेदखल हो रहे हैं और शहरों को पलायन कर रहे हैं।

यदि किसी देश में खेतीहर सर्वहारा की विशाल मौजूदगी हो तो दोनों ही स्थितियों में चाहे वह नव जनवादी क्रांति की मंजिल हो या समाजवादी क्रांति की मंजिल सर्वहारा वर्ग के विशिष्ट हितों के

मद्देनजर किसान वर्ग से उसके अन्तर्विरोधों के मद्देनजर किसी भी कम्युनिस्ट पार्टी को उसका अलग वर्ग संगठन बनाना चाहिये। उसकी मांगों को अलग से रेखांकित करना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो इसका अर्थ होगा ग्रामीण समाज में मौजूद अन्तर्विरोधों को धूमिल करना, इसका अर्थ होगा सर्वहारा के हितों के खिलाफ खड़ा हो जाना, इसका अर्थ होगा सर्वहारा वर्ग को किसान बुर्जुआ का पिछलग्गू बना देना। सर्वहारा वर्ग की पार्टी का हमेशा खुद को सर्वहारा वर्ग हितों, उसकी आकांक्षाओं के मद्देनजर ही अपनी रणनीति निर्धारित करनी चाहिए।

इस बारे में हम लेनिन और बोल्शेविक पार्टी को उद्धृत करेंगे। रूसी समाज में, जहां अभी खेतीहर सर्वहारा अपेक्षाकृत कम संख्या में था और गांवों में अभी बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग के अन्तर्विरोध तीखे नहीं थे, बोल्शेविक पार्टी ने अपने लिए क्या रणनीति निर्धारित की जबकि अभी क्रांति की मंजिल जनवादी ही थी।

> "इसके अलावा हर सूरत में और जनवादी कृषि सुधार की किसी भी स्थिति में रूसी सामाजिक–जनवादी मजदूर पार्टी अपने लिए ये कार्यभार निर्दिष्ट करती है – देहाती सर्वहारा से स्वतंत्र वर्ग संगठन के लिए सतत रूप से प्रयास करते रहना, उसे यह समझाना कि उसके हितों का किसान बुर्जुआ वर्ग के हितों के साथ अनन्य विरोध है; उसे छोटे पैमाने की मिल्कियत के प्रलोभन से बचने के बारे में सावधान करना, जो माल उत्पादन के विद्यमान रहते जन साधारण की गरीबी कभी नहीं मिटा सकती, और अंततः सारी गरीबी तथा सारे शोषण को मिटाने के एकमात्र साधन के रूप में पूर्ण समाजवादी क्रांति की आवश्यकता लक्षित करना।" (लेनिन,'मजदूर पार्टी के कृषि कार्यक्रम का संशोधन', खण्ड–3, स. र. दस खण्डों में, पृ.–284, प्र. प्र. मास्को)
>
> "तीसरा और अंतिम परामर्शः शहरों और गांवों के सर्वहाराओं तथा अर्द्ध–सर्वहाराओं, पृथक रूप से संगठित होओ। किसी भी छोटे मालिक पर – छोटे–से अथवा "मेहनतकश" मालिक तक पर यकीन न करो। जब तक माल–उत्पादन की व्यवस्था कायम है, तब तक छोटे पैमाने की मिल्कियत का प्रलोभन न करो। किसान विद्रोह विजय के जितने समीप पहुंचता है, मालिक किसान के सर्वहारा के विरूद्ध होने की संभावना उतनी ही अधिक होती है, सर्वहारा के पास अपना स्वतंत्र संगठन होना उतना ही आवश्यक हो जाता है तथा हमें पूर्ण समाजवादी क्रांति के लिए आह्वान उतने ही जोरदार ढंग से, धैर्यपूर्वक, दृढ़तापूर्वक तथा उच्च स्वर में करना चाहिए। हम किसान आंदोलन का अंत तक समर्थन करते हैं, परंतु हमें याद रखना है कि यह दूसरे वर्ग का आंदोलन है, **उस** वर्ग का **नहीं**, जो समाजवादी क्रांति संपन्न करता है तथा संपन्न करेगा। इसीलिए हम इस प्रश्न को एक किनारे छोड़ देते हैं कि आर्थिक कार्यकलाप के विषय के रूप में जमींन के वितरण का क्या किया जाना है – यह प्रश्न बुर्जुआ समाज में सिर्फ बड़े और छोटे मालिकों द्वारा तय किया जायेगा। और हमारी अधिकतर (तथा किसान विद्रोह की विजय के उपरांत अनन्य) रुचि इसी प्रश्न में रही है : देहात के सर्वहारा को क्या करना चाहिये? हमारी मुख्यतया रुचि

इसी प्रश्न में रही है तथा रहेगी; समाजीकृत भूमिधारण तथा इस जैसी चीजें गढ़ने का काम हम टुटपुंजिया वर्ग के विचारधारा–निरूपकों के लिए छोड़ देते हैं। इस प्रश्न का, नये, बुर्जुआ–जनवादी रूस के बुनियादी प्रश्न का हमारा उत्तर है : देहाती सर्वहारा को पूर्ण समाजवादी क्रांति के संघर्ष करने के लिए शहरी सर्वहारा के साथ स्वतंत्र रूप से संगठित होना होगा। (वही, पृष्ठ 280, जोर मूल में)

"अतः शुद्ध सर्वहारा संघर्ष को किसानों के आम संघर्ष के साथ संयुक्त करना चाहिए, परंतु मिश्रित करना नहीं। आम जनवादी तथा आम किसान संघर्ष का समर्थन करना चाहिए, परंतु किसी भी हालत में इस अवर्गीय संघर्ष से मिश्रित नहीं होना चाहिए, किसी भी हालत में समाजीकरण जैसे झूठे शब्द द्वारा उनका आदर्शीकरण नहीं करना चाहिए, पूर्ण रूप से स्वतंत्र वर्गीय सामाजिक–जनवादी पार्टी में शहरी **और देहाती** सर्वहारा को संगठित करने की बात किसी भी हालत में एक मिनट के लिए भी नहीं भूलनी चाहिए।" (लेनिन, 'निम्न बुर्जुआ और सर्वहारा समाजवाद', वही, पृष्ठ 216, जोर मूल में)

यह है लेनिन और बोल्शेविक पार्टी का दृष्टिकोण। किंतु हमारे यहां के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों ने लेनिन के इन बातों को सिरे से भुला दिया है और यहां ध्यान रहे कि लेनिन ये सारी बातें उस रूस के लिए कह रहे हैं जहां जनवादी क्रांति की मंजिल है। जनवादी क्रांति की मंजिल में भी कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को ग्रामीण सर्वहारा को एक अलग वर्ग के रूप में संगठित करना चाहिए। लेनिन ग्रामीण सर्वहारा के लिए कहते हैं कि छोटे मालिक पर भरोसा न करो, उसे यह समझना चाहिए कि यह उस वर्ग का आंदोलन नहीं है जो समाजवादी क्रांति संपन्न कर सकता है। वे निरंतर ग्रामीण सर्वहारा को स्वतंत्र संगठन के रूप में संगठित करने की सलाह देते हैं। किंतु हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रामीण सर्वहारा को किसानों के तुल्य रख देते हैं, वे उसे छोटा मालिक बनाने के लिए उद्यत हैं। वे उसको किसानों के साथ संगठित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। स्पष्ट तौर पर जनवादी क्रांति में भी जहां सर्वहारा के वर्ग हितों को, उसके अगुवा को एक पल के लिए भी नहीं भूलना चाहिए वहीं यहां सर्वहारा वर्ग के विशिष्ट हित, उसकी विशिष्ट मांगें, उसका स्वतंत्र संगठन और उसको सर्वहारा दृष्टिकोण पर खड़ा करना, यह सब नदारद है। यदि मौजूद है तो सर्वहारा वर्ग को भी निम्न बुर्जुआ दर्शन और निम्न बुर्जुआ वर्ग के हितों के स्तर पर उतार लाने का कर्तव्य।

आज भारत के 11करोड़ खेतिहर सर्वहारा को जबकि जरूरत है समाजवाद की, जरूरत है उसके स्वतंत्र वर्गीय संगठन को खड़ा करने की, जरूरत है उसकी अन्य तात्कालिक मांगों को पेश करने की, ताकि वह ग्रामीण क्षेत्रों में किसान बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ स्वतंत्र रूप से अपनी मांगे रख सके और ग्रामीण बुर्जुआ के विरूद्ध अपना संघर्ष तीक्ष्ण करके समाजवाद की ओर बढ़ सके। ताकि वह समग्र पूंजीपति वर्ग के खिलाफ संघर्ष में नेतृत्वकारी स्थिति अर्जित कर सके।

# II

अब हम न्यूनतम समर्थन मूल्य और कृषि आगतों (agriculture input) के प्रश्न को लेते हैं। नव जनवादी क्रांति को मानने वाले अनेक संगठनों द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्यों में वृद्धि व कृषि आगतों में कमी के लिए मांगों का न सिर्फ समर्थन किया जाता है बल्कि वे इसके लिए संघर्ष करने के लिए भी प्रतिबद्ध दिखायी देते हैं। आज के संदर्भों में हम इन मांगों की प्रकृति को देखने का प्रयास करेंगे। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि इन मांगों का समर्थन और इनके लिए संघर्ष किसानों की समग्र आबादी के लिए किया जाता है। अनेक कम्युनिस्ट क्रांतिकारी, किसानों के बीच, इन मांगों के संदर्भ में कोई फर्क नहीं करते हैं। ये संगठन इन मांगों के संदर्भ में पिछले वर्षों में आये बदलावों तक को अपने संज्ञान में नहीं लेते हैं। इन संगठनों का मानना है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य के ढांचे के कमजोर होने और कृषि लागतों के दाम बढ़ने से समग्र किसान आबादी को नुकसान पहुँच रहा है।

प्रत्येक वर्ष रबी और खरीफ की फसल के तैयार होने के समय, न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करने और उसे बढ़ाने की मांग, देश के अनेकानेक हिस्सों से उठाई जाती है। किसान इसके लिए धरना, प्रदर्शन, रेल रोको, जाम आदि कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं। इसमें विशेषकर धनी किसानों के संगठन भाग लेते हैं। धनी किसान, मध्यम किसानों और गरीब किसानों को भी अपने पीछे लामबंद करने में सफलता हासिल कर लेते हैं।

इसी प्रकार, न्यूनतम समर्थन मूल्य को बढ़ाने की मांग के साथ–साथ कृषि आगतों जैसे बीज, खाद, कृषि उपकरणों, बिजली, पानी, डीजल के दामों में वृद्धि के खिलाफ भी किसानों के प्रदर्शन होते हैं। देश में बड़े किसान संगठनों की मांगों का यही मांग बड़ा हिस्सा बनती हैं। ये किसान निरंतर मांग उठाते रहते है कि सरकार कृषि आगतों पर सब्सिडी कम करना बंद करे। वे सब्सिडियां जारी रखने के पक्षधर हैं। इन संगठनों का कहना है कि सब्सिडियां कम करने से उनको अपने कृषि उत्पादों से उचित फायदा हासिल नहीं हो पाता है। हम इसे बाद में लेंगे कि कैसे यह मांगे आज धनी किसानों और पूंजीवादी फार्मरों के हितों की सेवा करती हैं और इनका असली फायदा कुलकों और फार्मरों की लाबी ही उठाती हैं कि कैसे आज ये मांगे मध्यम तथा गरीब किसानों को मुख्य फायदा नहीं पहुंचाती हैं। हम पहले विभिन्न संगठनों के दस्तावेजों के उद्धरणों को देखेंगे कि उनके द्वारा उठायी जाने वाली इस प्रकार की मांगें धनी किसान संगठनों की मांगों से कैसे मेल खाती हैं।

> "नई आर्थिक नीतियों ने किसानों पर विशेष आघात किया है। खेती में लागत – बिजली, खाद और नये बीजों के दाम कई गुना बढ़ गये हैं जबकि इसकी तुलना में कृषि उत्पादों के दाम बहुत कम हैं। यह स्थिति गरीब और मझोले किसानों के लिए अत्यधिक दुष्कर है।" ('राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा हमारे कार्य', पार्टी कांग्रेस 1996 द्वारा पारित, सी.पी.आई.(एम.एल.) न्यू डेमोक्रेसी, पृष्ठ 25)
>
> "भूमि व जल पर बढ़े करों, बिजली के दामों, खाद व बीज के दामों मे वृद्धि के खिलाफ, सिंचाई साधनों में वृद्धि के लिए, कृषि उत्पादों के उचित दामों के लिए हर प्रकार

की बंजर, अतिरिक्त व अन्य भूमि पर कब्जे तथा उसे भूमिहीन व गरीब किसानों में वितरित करने, खेतिहर मजदूरों के वेतन बढ़ाने तथा उनके लिए व्यापक कानून बनाने व किसानों की अन्य मांगों पर संघर्ष के लिए किसानों को गोलबंद करो।" (वही, पृष्ठ 56–57)

"देश के कुछ भागों में, जैसे पंजाब, हरियाणा का एक बड़ा हिस्सा व दूसरे राज्यों के कुछ पॉकेटों में, जहां पूंजीवादी सम्बन्ध कुछ हद तक विकसित हुए हैं, धनी व मध्यम किसान अपने उत्पादों के मूल्य और अधिक बढ़ाये जाने और कृषि आगतों के मूल्यों को घटाये जाने की मांग को लेकर संघर्ष कर रहे हैं। आई.एम.एफ. व विश्व बैंक के निर्देशों पर सब्सिडी के हटाये जाने के परिणामस्वरूप खाद के दामों में आई वृद्धि ने देश भर में किसानों को संघर्ष के लिए उतार दिया था। अधिसंरचनात्मक सब्सिडी के हटाये जाने से और पानी व बिजली की दरों, यातायात व डीजल के दामों में आये बेशुमार वृद्धि ने किसानों को उत्तरोत्तर संघर्ष में उतारा है। आंध्र प्रदेश के पश्चिमी गोदावरी जिले में, मध्यप्रदेश में बेतुल में, कर्नाटक के सीरा में व हरियाणा में कई जगहों पर किसानों पर गोली चली व कई किसान मारे गए, यह साम्राज्यवाद विरोधी और राज्य विरोधी किसान आंदोलनों के बढ़ते महत्व को दिखाता है। और अंत में व्यापारिक फसलों के प्रतिकूल व्यापार करारों और सजीव प्राणियों (living organism) पर पेटेन्ट हो जाने के कारण तमाम किसान बहुराष्ट्रीय बीज कम्पनियों और कृषि व्यवसायी पारदेशीय कम्पनियों के चंगुल में फंसते जा रहे हैं और धनी किसान सहित किसान समुदाय भारतीय राज्य व साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष करने को बाध्य हो रहे हैं। हमें इन संघर्षों का समर्थन और इनमें हिस्सेदारी करनी होगी। जहां भी हम मजबूत स्थिति में हैं हमें मध्यम किसानों में अपने आपको स्थापित करते हुए और धनी किसानों के बड़े हिस्से को अपने पक्ष में जीतते हुए व बाकी को तटस्थ बनाते हुए नव जनवादी क्रांति को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से इन संघर्षों को नेतृत्व प्रदान करना चाहिए और भागीदारी लेनी चाहिए। इन संघर्षों में भागीदारी लेते वक्त उनके नेतृत्व के वर्ग चरित्र, जो मूलतः पूंजीवादी भूस्वामी हिस्सों में आते हैं को बेनकाब करना होगा और उनकी मांगों की सीमाओं को चिह्नित करना चाहिए। (नवीं कांग्रेस द्वारा स्वीकार किये गये राजनैतिक प्रस्ताव सी.पी.आई. (एम.एल.) पीपुल्स वार पृष्ठ–56–57, अनुवाद हमारा )

ये दो संगठनों के दस्तावेजों से लिये गये प्रतिनिधिक उदाहरण हैं। अन्य उदाहरणों में और धनी किसानों द्वारा चलाये जा रहे संघर्ष के मुद्दों में अद्भुत साम्य है। अन्य संगठनों के दस्तावेजों में और पत्रिकाओं में भी इसी प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं। यहां समस्या यह नहीं है कि ये संगठन उपर्युक्त मांगों को उठाते हैं और उनके लिए संघर्ष करते हैं। समस्या इसमें निहित है कि वे इन मांगो को उठाने और उसके लिए संघर्ष करने में कोई विभाजक रेखा नहीं खींचते हैं। यदि पीपुल्स वार जैसा संगठन इन

मांगों को उठाने व संघर्ष के समय पूंजीपति जमींदारों के वर्गीय चरित्र व उनकी मांगों की सीमाओं को बेनकाब करने के बारे में लिखता भी है तो ऐसा मात्र औपचारिक तौर पर ही होता है।

किसान आबादी समांग नहीं है बल्कि वह विभेदित है। इसलिए न्यूनतम समर्थन मूल्य प्रणाली और कृषि आगतों में जारी सब्सिडी का लाभ समस्त कृषक आबादी में समान रूप से वितरित नहीं होता। धनी किसान और पूंजीवादी फार्मर इस व्यवस्था से ज्यादा लाभ उठा पाने में सक्षम होते हैं जबकि मध्यम और छोटे किसान कम। इसका कारण यह है कि आज ज्यादातर उत्पादन बाजार की जरूरतों के अनुरूप हो रहा है। किसानों के सभी हिस्सों को अपने उत्पादों को बाजार में लाकर बेचना होता है। धनी किसानों और फार्मरों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने के कारण उनके लिए यह सम्भव हो जाता है कि वे अपने उत्पाद को बाजार में ले जाने से तब तक रोक कर रखें रहे जब तक मंडियों में दाम नहीं चढ़ जाते हैं। इसके लिए उनके पास भंडारण आदि की सुविधायें भी होती हैं। अपनी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के कारण उनके लिए यह भी सम्भव हो पाता है कि वे सरकारी क्रय केन्द्रों में अपने उत्पाद को ज्यादा से ज्यादा पहुंचाकर उससे लाभ अर्जित कर सकें। किंतु मध्यम और छोटे किसानों के लिए अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण ऐसा कर पाना एक हद तक मुश्किल होता है। तात्कालिक जरूरतों और अक्सर तो कर्ज अदायगी के कारण मध्यम और छोटे किसानों को अपनी उपज का अधिकांश हिस्सा बिचौलियों आदि को ही बेच देना पड़ता है और वह भी काफी सस्ते दामों पर। उनके पास भंडारण की भी बेहतर स्थितियां नहीं होती हैं। इस वजह से मध्यम और छोटे किसान समर्थन मूल्य प्रणाली से अपेक्षाकृत कम लाभ उठा पाते हैं। ऐसा केवल खाद्यान्न के मामले में ही नहीं अन्य फसलों के मामलों में भी होता है। कृषि सब्सिडी के मामले में भी यही बात है कि सब्सिडी का मुख्य लाभ धनी किसान और फार्मर ही उठाते हैं।

किंतु पिछले डेढ़ दशकों में ऐसे बदलाव आये हैं जिनकी सबसे ज्यादा मार मध्यम और छोटे किसानों पर पड़ेगी। नई आर्थिक नीतियों को लागू करने के बाद से होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप बाजार का एकीकरण पहले से भी ज्यादा बढ़ गया है। ऐसा न सिर्फ राष्ट्रीय बाजार के संदर्भ में वरन् विश्व बाजार के संदर्भ में भी हमारी कृषि व्यवस्था का एकीकरण पहले से ज्यादा बढ़ गया है। और ऐसा क्रमशः होता जा रहा है। केन्द्र सरकार की नई राष्ट्रीय कृषि नीति के तहत किये जा रहे परिवर्तनों से यह स्पष्ट है। इसके तहत बीज की खरीद का नियमतीकरण, बीज की नई प्रजातियों पर रायल्टी वसूली का इंतजाम, कृषि आगतों पर सब्सिडी की समाप्ति, उत्पादन शुल्क की शुरूआत, कृषि उत्पादों के व्यापार को राष्ट्रीय स्तर पर बंधन मुक्त करना, समर्थन मूल्य प्रणाली का क्रमशः खात्मा आदि तौर–तरीके अपनाये जा रहे हैं। हम यहां यह साफ कर दें जैसा कि पीपुल्स वार के दस्तावेज में दर्ज है कि सजीव प्राणियों पर पेटेन्ट हो जाने के कारण तमाम किसान बहुराष्ट्रीय बीज कम्पनियों के चंगुल में फंसते जा रहे है, यह बात तथ्यतः गलत है। पीपुल्स वार द्वारा यह बात लिखे जाने तक नया पेटेन्ट कानून लागू नहीं हुआ था।

उपर्युक्त तौर–तरीके स्पष्ट तौर पर बाजार के उतार–चढ़ावों को अत्यधिक बढ़ा देंगे। ऐसा न सिर्फ देश की कृषि व्यवस्था में प्रभुत्वशाली वर्गों व सटोरियों एवं व्यापारियों द्वारा किया जायेगा वरन् अब हमारी कृषि व्यवस्था अंतर्राष्ट्रीय मंडी के उतार–चढ़ावों से भी प्रभावित होगी। और इन उतार–चढ़ावों से मध्यम व

छोटे किसान ही सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे क्योंकि अपनी कमजोर आर्थिक हैसियत के कारण बाजार की शक्तियों से अपना बचाव कर पाना उनके लिए सम्भव नहीं रह पायेगा। हम देखते हैं कि धनी किसान और फार्मर समर्थन मूल्य प्रणाली और कृषि आगतों पर जारी सब्सिडी का बड़ा लाभ उठाते है और उनके संगठन इसके लिए अपनी आवाज भी उठाते हैं तो दूसरी ओर शेतकारी जैसे संगठन वैश्वीकरण की नीतियों का समर्थन करते हैं जिसके तहत उपर्युक्त दोनों का क्रमशः खात्मा किया जा रहा है। ऊपरी तौर पर ये दोनो विरोधी बातें लगती हैं। परंतु वास्तव में ऐसा है नहीं। यदि ऐसा होता तो धनी किसानों और फार्मरों के प्रतिनिधि व उनके प्रतिनिधि संगठन ऐसी नीतियों का समर्थन नहीं करते जो उनके वर्गीय हितों के पूर्णतः खिलाफ हों। ये सच है कि धनी किसान और बडे फार्मर ही समर्थन मूल्य प्रणाली और कृषि आगतों में जारी सब्सिडी का सबसे ज्यादा लाभ उठाते हैं और इनके खात्मे से वे इस लाभ से वंचित हो जायेंगे और इसी कारण यह वर्ग नहीं चाहेगा कि वह ऐसे लाभ से वंचित हों। किंतु इससे भी महत्वपूर्ण यह वर्ग इस बात का पक्षधर है कि कृषि उत्पाद की खरीद और बिक्री पर लगी सभी तरह की पाबंदियां खत्म कर दी जायें। और सब कुछ बाजार की शक्तियों द्वारा नियंत्रित हो और ये वर्ग स्वयं बाजार का सबसे बड़ा खिलाड़ी होने के कारण कृषि उत्पादों की खरीद और बिक्री से अधिकांश लाभ उठा सकें। धनी किसान और फार्मर देश के पूंजीपति वर्ग के हिस्से हैं और चूंकि वैश्वीकरण की नीतियां आम तौर पर इस वर्ग के हितों की नुमाइंदगी करती हैं। इसलिए यह वर्ग इन वैश्वीकरण की नीतियों का पक्षधर है और इन नीतियों के परिणामस्वरूप यदि उसे कुछ लाभों से वंचित रहना भी पड़ता है तब भी वह इन नई आर्थिक नीतियों के खिलाफ नहीं जायेगा जैसा कि नव जनवादी क्रांति को मानने वाले संगठन समझते हैं। सच तो यह है कि धनी किसान और फार्मर दोनों बातें एक साथ चाहते हैं। वे एक ओर यह भी चाहते हैं कि राज्य समर्थन उन्हें सब्सिडी आदि के रूप में मिलता रहे तो दूसरी ओर वे मुक्त बाजार व्यवस्था के लाभों को भी उठाना चाहते हैं। सब्सिडी और अन्य लाभों के मद्देनजर उनकी आवाजें इसी बात का द्योतक हैं।

ऐसे में कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को इन मांगों के संदर्भ में क्या रुख अपनाना चाहिए? उन्हें इन मांगों का बिना किसी विभाजक रेखा के समर्थन करना चाहिए या फिर उन्हें विभाजक रेखा खींचनी चाहिए। यदि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी किसान समुदाय के बीच इन मांगों के संदर्भ में विभाजक रेखा नहीं खींचते हैं और ऐसा भी मात्र औपचारिक तौर पर नहीं बल्कि व्यवहारतः भी इसी दृष्टिकोण से मांगे और नारे नहीं पेश करते हैं तो इसका साफ अर्थ यही होगा कि हमने खुद को धनी किसानों और फार्मरों का पिछलग्गू बना लिया है; कि हमने मध्यम व छोटे किसानों के भविष्य का फैसला धनी किसानों और फार्मरों पर छोड़ दिया है। इसके बजाय कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को अपनी मांगें और नारे इस संदर्भ में मध्यम किसानों और छोटे किसानों के मद्देनजर पेश करने चाहिए। चूंकि समर्थन मूल्य प्रणाली का खात्मा और कृषि आगतों पर जारी सब्सिडी का खात्मा किसानों के इन हिस्सों के भी खिलाफ है और ऐसी नीति इन किसानों की स्थिति को पहले से भी ज्यादा बदतर बनायेगी और उन्हें बाजार की मार पहले से भी ज्यादा प्रभावित करेगी। इसलिए कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को एक ओर इस बात का समर्थन और इसके लिए संघर्ष करना चाहिए कि कृषि सब्सिडी और न्यूनतम समर्थन मूल्य प्रणाली जारी रहे तो दूसरी ओर कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को इस तरह की मांगे भी पेश करनी चाहिए ताकि इनका वास्तविक फायदा मध्यम और छोटे किसानों को प्राप्त हो सके

न कि धनी किसानों व फार्मरों को। इसके साथ ही कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को मध्यम व छोटे किसानों के हितों के मद्देनजर ऐसी मांगों को उठाना और उनके लिए भी संघर्ष करना चाहिए जो धनी किसानों, फार्मरों और बिचौलियों द्वारा बाजार में लाये जाने वाले उतार–चढ़ाव से, उन्हें जितना सम्भव हो सके बचा सके। हमें इन नीतियों के संदर्भ में धनी किसानों और फार्मरों के हितों को स्पष्टता के साथ उजागर करना चाहिए। ऐसा करके ही कम्युनिस्ट क्रांतिकारी मध्यम व छोटे किसानों के हितों की लड़ाई लड़ सकते हैं। ऐसी मांगें उठाकर, इनके लिए संघर्ष करने के साथ ही वे मध्यम व छोटे किसानों को धनी किसानों के नेतृत्व से निकालकर उन्हें अपने साथ लाकर, क्रांति के साथ खड़ा कर सकते हैं। ऐसा करके ही सर्वहारा वर्ग के अगुवा इन समूहों के साथ अपनी एकता को मजबूत कर सकते हैं।

# III

हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच में, क्रांति में, धनी किसानों की भूमिका को लेकर भी गलत धारणा मौजूद है। नव जनवादी क्रांति की लाइन को ही मानने वाले संगठन धनी किसानों को संश्रयकारी के तौर पर देखते हैं हालांकि इस वर्ग के ढुलमुलपन के साथ। अर्थात ये संगठन धनी किसानों को मित्र वर्ग के रूप में चिह्नित करते हैं। इन संगठनों का मानना है कि धनी किसानों का बहुलांश नव जनवादी क्रांति में साथ आयेगा जबकि उसका एक छोटा हिस्सा ही क्रांति के खिलाफ खड़ा होगा। इस मामले में हम विभिन्न संगठनों अवस्थितियों को निम्न तरीके से देखते हैं।

> "...किसानों के विभिन्न हिस्सों में से हमें अपने आप को भूमिहीन व गरीब किसानों पर आधारित करना चाहिये, मध्यम किसानों के साथ स्थाई मित्रों के रूप में एकता करनी चाहिये तथा सामन्तवाद विरोधी तथा सरकार विरोधी संघर्ष में धनी किसानों को अपने पक्ष में करने के प्रयास करने चाहिये हालांकि ये ढुलमुल सहयोगी होते हैं।" (भारत की कम्युनिस्ट पार्टी(मा.ले.) न्यू डेमोक्रेसी का कार्यक्रम, पृष्ठ–7)
>
> "मजदूर वर्ग के नेतृत्व में जनवादी क्रांति की सबसे बड़ी ताकत किसान हैं। मजदूर वर्ग भूमिहीन व गरीब किसानों पर पूरा भरोसा करता है, मध्यम किसानों से मजबूती से एकता करता है तथा धनी किसानों के भी एक हिस्से को अपनी तरफ करता है तथा बाकी हिस्से को तटस्थ बना देता है । धनी किसानों का केवल छोटा हिस्सा ही अन्ततः क्रांति के दुश्मनों में शामिल होता है।" (वही, पृष्ठ 9–10)
>
> "...खेतीहर मजदूरों और गरीब किसानों पर भरोसा करते हुए, मजदूर वर्ग मध्यम किसानों के साथ मजबूती के साथ एकताबद्ध होगा और धनी किसानो के एक हिस्से को अपने साथ मिलायेगा जबकि शेष को तटस्थ करेगा। धनी किसानों का केवल एक छोट हिस्सा ही होगा जो कि अन्त में क्रांति के शत्रुओं से मिलेगा।" (Party programme, adopted in the 9th Congress (March,2001) CPI(ML) People´s War, page-20, अनुवाद हमारा)

"कुछ पाकेट में कृषि में पूंजीवादी सम्बन्धों के विकास, कृषि लागत सामग्रियों को खरीदने और उत्पादन को बेचने के लिए धनी किसानों की बाजार पर बढ़ती निर्भरता, उन्हें साम्राज्यवाद और दलाल बड़े पूंजीपति वर्ग जो बाजार को नियंत्रित करते हैं, के साथ बढ़ती टकराहट में ला रही है। और इस प्रकार किसान समुदाय के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों में वे अधिकाधिक खिंचते आ रहे हैं। परन्तु अपनी वर्गीय स्थिति के कारण राज्य के बढ़ते दमन के सम्मुख वे समझौता कर जाने का रूझान रखते हैं। सामान्यतः वे कृषि क्रांतिकारी संघर्ष में तटस्थ रहते हैं। वर्ग के रूप में, वे क्रांति के ढुलमुल संश्रयकरी समझे जा सकते हैं।" (Strategy &Tactics, adopted by the 2nd Congress March 2001CPI(ML) People's war, पेज.15–16, अनुवाद हमारा)

"अर्द्ध–सामंती उत्पादन पद्धति में किसान समुदाय कतई एकाश्म वर्ग नहीं है और अपनी खुद की विशेषताओं के साथ यह विभिन्न विशिष्ट संस्तरों में विभेदीकरण की प्रक्रिया में है। और भी, धनी किसानों के छोटे संस्तर को छोड़कर – जिसमें कि शोषणकारी वर्ग और श्रमिक वर्ग दोनों विद्यमान होते हैं, इस प्रकार,जनवादी क्रांति में दोहरा व्यवहार प्रदर्शित करता है – किसान समुदाय अर्थात गरीब भूमिहीन और मध्यम किसान भारतीय नव जनवादी क्रांति की मुख्य प्रेरक शक्ति हैं।" (Programme for People`s Democratic Revolution in India (draft) (CPRCI-ML), August-1995, Page-21, अनुवाद हमारा)

इन उक्त पार्टियों के दस्तावेजों से लिये गये उद्धरणों से साफ स्पष्ट होता है कि वे धनी किसान को कृषि क्रांति में संश्रयकारी की भूमिका में देखते हैं और उसे साथ लेने के लिए प्रयासों की बात करते हैं। पीपुल्स वार के रणनीति और रणकौशल नामक दस्तावेज के उद्धरण में धनी किसानों की एक वर्ग के तौर पर तटस्थता की बात कही गयी है जो कि पीपुल्स वार के कार्यक्रम से लिये गये उद्धरण के ठीक विपरीत है। सच तो यह है कि पीपुल्स वार की नवीं कांग्रेस के दस्तावेजों में भी अधिकांश जगह यही लिखा हुआ है कि धनी किसानों के एक हिस्से को अपने साथ लाने का प्रयास करना होगा शेष को तटस्थ करना होगा। यहां हम स्पष्ट देखते हैं कि ये संगठन धनी किसानों को एक वर्ग के तौर पर तटस्थ नहीं करना चाहते बल्कि उनकी कोशिश है कि यह वर्ग नव जनवादी क्रांति में उनके साथ आयें। वे उसे मित्र वर्ग के तौर पर देखते हैं। धनी किसानों के मित्र वर्ग के तौर पर देखना या उसे तटस्थ करने के बजाय हर कीमत पर उसे अपने साथ लाने का प्रयास करना स्वयं नव जनवादी क्रांति के दृष्टिकोण से भी उचित नहीं है।

यहां हम चीनी क्रांति के दौरान माओ द्वारा, धनी किसान की क्रांति में भूमिका के बारे में की गयी बातों को भी देख सकते हैं। माओ ने कहा कि धनी किसान, किसान जनता के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में कुछ साथ दे सकते हैं और जमींदारों के विरूद्ध खेतीहर क्रांतिकारी संघर्ष में तटस्थ रह सकते हैं।

"..चीन में धनी किसानों का अधिकांश अर्द्ध–सामन्ती स्वभाव के हैं क्योंकि वे अपनी भूमि का एक हिस्सा लगान पर उठाते हैं, सूदखोरी करते हैं और खेत मजदूरों का निर्मम शोषण करते हैं। लेकिन आम तौर पर वे स्वयं भी श्रम करते हैं, इसलिए इस अर्थ में वे किसान

जनता के अंग हैं। एक निश्चित काल तक उत्पादन का धनी किसान स्वरूप लाभदायक रहेगा। आम तौर पर वे किसान जनता के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में कुछ योग दे सकते हैं और जमीदारों के विरूद्ध खेतिहर क्रांतिकारी संघर्ष में निष्पक्ष रह सकते हैं।" (माओ त्से–तुङ, चुनी हुई कृतियां, दूसरा ग्रंथ,पृष्ठ–394)

चीनी क्रांति में माओ धनी किसानों के प्रति यह दृष्टिकोण तब अपनाते हैं जबकि चीन में पूंजीवादी विकास अत्यंत निम्नस्तर पर है। किंतु हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी धनी किसानों को कृषि क्रांति के दोस्त के तौर पर और उसके एक हिस्से को हर कीमत पर अपने साथ लाने को तब भी उद्यत दिखाई देते हैं जबकि अधिकांश संगठन देश के अलग–अलग क्षेत्रों में पूंजीवादी सम्बन्धों की कम या ज्यादा मात्रा में मौजूदगी को स्वीकार करते हैं।

अब हम धनी किसानों की क्रांति में भूमिका के प्रश्न पर एक अन्य संदर्भ को उद्धृत करेंगे। धनी किसानों के प्रति दृष्टिकोण के मामले में "आन्ध्रा पत्र" में हम देखते है कि वहां धनी किसानों को एक वर्ग के तौर पर तटस्थ करने का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

"1. क्योंकि क्रांति की वर्तमान मंजिल समाजवादी मंजिल नहीं, नव जनवादी मंजिल है, मध्यम किसान जो क्रांति में भागीदारी करता है क्रांति का दृढ़ सहयोगी है। धनी किसान जिसकी कोई सामंती पृष्ठभूमि नहीं है, एक वर्ग के रूप में तटस्थ किया जा सकता है किंतु तेलंगाना और रायलसीमा जैसे क्षेत्रों में जहां सामंतवाद बहुत मजबूत है यहां तक संभव है धनी किसान के हिस्सों को संघर्ष में लाया जा सके (यद्यपि ढुलमुलपन के साथ )।" (Andhra Letter of 9th July 1948, The Comrade, vad- 11&12, page-97, अनुवाद हमारा)

इस प्रकार हम देखते हैं कि "आंध्रा पत्र" तक में धनी किसानों को तटस्थ करने की ही बात कही गयी है। धनी किसानों को संघर्ष में लाये जा सकने की सम्भावना को और वह भी ढुलमुल पन के साथ उन्हीं क्षेत्रों के लिए कहा गया है जहां सामंतवाद बहुत मजबूत है। जबकि हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी इस पत्र के लिखे जाने की आधी शताब्दी से भी अधिक गुजरने के बाद भी धनी किसानों के प्रति एक गलत दृष्टिकोण अपनाये हुए हैं। और जबकि ऐसा नव जनवादी क्रांति के दृष्टिकोण से भी गलत हो। इसलिए यह अनायास नहीं है कि अनेक कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन धनी किसानों को लाने के फेर में, उनकी मांगों और उनकी आकांक्षाओं के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर पिछलग्गू ही सिद्ध होते है।

पिछले पचास वर्षों में सच तो यह है कि भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन आ गये हैं। भारतीय कृषि के शनैः शनैः अर्द्ध–सामंती उत्पादन सम्बंधों से पूंजीवादी सम्बंधों में बदलाव ने पुराने वर्गों और पुरानी उत्पादन पद्धति को मूलतः समाप्त कर दिया है। कृषि के पूंजीवादी रूपांतरण के कारण किसानों के बीच में विभेदीकरण हुआ है। पुराने भूस्वामी वर्गों के पूंजीवादी भूस्वामियों में रूपांतरण और विभेदीकरण के परिणामस्वरूप पैदा होने वाले धनी किसान ग्रामीण क्षेत्रों में एक ओर हैं तो दूसरे छोर पर गरीब किसान, खेतिहर सर्वहारा हैं। यही पूंजीवादी भूस्वामी और धनी किसान ग्रामीण क्षेत्रों के प्रभुत्वकारी वर्ग हैं जिनका आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में वर्चस्व है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज संघर्ष इसी ग्रामीण बुर्जुआ वर्ग

के खिलाफ बनता है। ग्रामीण क्षेत्रों का यह बुर्जुआ वर्ग ही देश में कृषि में होने वाली साम्राज्यवादी घुसपैठ का अवलम्ब है। इस वर्ग का साम्राज्यवाद के साथ कोई दुश्मनाना अन्तर्विरोध नहीं बनता है। इसलिए आज के संदर्भ में धनी किसानों को मित्र वर्ग के रूप में देखना या उसे साथ लाने का दृष्टिकोण या यहां तक कि क्रांति में उसे तटस्थ करने की रणनीति गलत है। ऐसी रणनीति ग्रामीण क्षेत्रों के वास्तविक अन्तर्विरोध पर पर्दा डालती है। ऐसी रणनीति मध्यम, गरीब और खेतिहर सर्वहारा के हितों और उनकी आकांक्षाओं को तिलांजलि देती है। धनी किसान आज शत्रु वर्ग में शामिल है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज यही वर्ग क्रांति का निशाना है।

इन संगठनों की एक अन्य असंगति यह है कि वे अपने दस्तावेजों में धनी किसानों के लिए यह भी सूत्रित करते है कि उनका एक हिस्सा शोषण और उत्पीड़न के सामंती तौर–तरीकों का भी इस्तेमाल करता है तथा सूदखोरी भी करता है। यह हिस्सा जमींदारों के साथ है। क्योंकि वह कृषि में होने वाले परिवर्तनों और लाभों को उठा रहा है जैसे कि जमींदार वर्ग उठा रहा है। इसके बावजूद यह कैसे सम्भव है कि कोई भी वर्ग सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों से भरपूर फायदा उठा रहा हो तब भी उसे क्रांति में लाया जा सके। यह भी कहा जा सकता है कि सरकारी नीतियां और कार्यक्रम इसी धनी किसान और भूस्वामी वर्ग (पूंजीवादी फार्मर) को ध्यान में रखकर चलाये जा रहे है। इसी कारण से इस ग्रामीण बुर्जुआ धनी किसान और भूस्वामी वर्ग के हित मौजूदा व्यवस्था के साथ नाभिनालबद्ध हैं।

# IV

अब हम सूदखोरी के मामले में जारी दृष्टिकोण को लेते हैं। इस मामले में दो दृष्टिकोण अपनाये जाते हैं पहला यह कि सूदखोर पूंजी किसानों का भारी तादाद में शोषण करती है अतः इसके खिलाफ संघर्ष करना चाहिए, दूसरा यह कि पूंजीवाद के तहत सूदखोरी जैसे शोषण के सामंती तौर–तरीके नहीं होने चाहिए। इसके तहत यह मानकर चला जाता है कि पूंजीवाद के तहत सूदखोरी नहीं होती है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम पीपुल्स वार की नवीं कांग्रेस के दस्तावेज से दो उद्धरण दे रहे हैं।

> "....गैर आर्थिक दबाव मौजूद हैं तथा किसान समुदाय जीवन निर्वाह के स्तर से भी नीचे जीने को मजबूर है। गांव में मौजूद अर्द्ध–सामंती शोषण के तरीके हैं – बटाईदारों के उत्पादन के कम से कम 50 प्रतिशत की जबर्दस्त वसूली, बंधुवा व लगवा मजदूरों को काम में लगाना और सूदखोरी व महाजनी पूंजी का प्रभुत्व। टुकड़ों में बंटी हुई जमीन पर पिछड़ी कृषि मुख्य रूप से पुराने तरीकों और प्रकृति की मेहरबानियों पर निर्भर है और मध्यम किसानों की व्यापक संख्या किसी तरह गुजारे लायक अर्थव्यवस्था में जीवन निर्वाह करती है। अर्द्ध–सामंती रिश्तों के कारण हमारे करोड़ों लोग आधी भुखमरी और भयावह गरीबी की हालत में जी रहे हैं। **देहात में जमींदारों, सूदखोरों और महाजनों का प्रभुत्व है।**

जमींदारों, सूदखोरों और महाजनों का यही वर्ग हैं जो अर्द्ध–सामंती उत्पादन सम्बंधों का मुख्य स्तम्भ हैं।" (नवीं कांग्रेस द्वारा स्वीकृत पार्टी कार्यक्रम, CPIML(PW) पृष्ठ 9)

"हरित क्रांति ने खादों, एच.वाई.वी. बीजों और अन्य आगतों की खपत को भारी मात्रा में बढ़ा दिया जिसके फलस्वरूप उत्पादन की लागत बढ़ गई है। **इस प्रकार उत्पादकता और उत्पादन बढ़ने के बावजूद, चूंकि कृषि में बचत कम हो गई, अतः किसान समुदाय की स्थिति में आशानुसार सुधार नहीं हो सका। इसने किसान समुदाय की विशाल बहुसंख्या को व्यापारियों सूदखोरों, जमींदारों बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के चंगुल में और ज्यादा फंसा दिया है।"** (वही, पृष्ठ.8, जोर हमारा)

इसी संदर्भ में सी.पी.आई. (एम.एल.) न्यू डेमोक्रेसी के 'कार्यक्रम' व 'रास्ता' से कुछ उद्धरणों को लेते हैं,

"..भूमिहीन व गरीब किसानों को अपने वार्षिक उत्पादन का 50 प्रतिशत या अधिक हिस्सा जमींदारों को देना पड़ता है। सूदखोर पूंजी द्वारा किसानों का खून चूसना जारी है जबकि किसानों पर महाजनों, बैंकों, व कोआपरेटिव संस्थाओं के कर्ज बढ़ते जा रहे हैं।" ख्कार्यक्रम, रास्ता,संविधान, सी.पी.आई.(एम.एल.) (न्यू डेमोक्रेसी) की पार्टी कांग्रेस अगस्त 1996 द्वारा पारित संशोधनों के साथ, पृष्ठ .7,

"....हमारे गांवों में जमींदारों द्वारा शोषण, आसामी किसानों का शोषण, बंधुआ मजदूर, नागु (अनाज के द्वारा सूदखोरी), सूदखोरी, मनमाने दामों पर अपना अतिरिक्त गल्ला बेचना, साम्प्रदायिक व जातीय उत्पीड़न व दमन और गांव में आर्थिक व राजनैतिक आधिपत्य इत्यादि।" (वही, पृष्ठ–23)

इसी प्रकार के सूदखोरी से सम्बन्धित उद्धरण अन्य पार्टी संगठनों के दस्तावेजों में भी मिलते हैं।

सर्वप्रथम तो हम यह कहना चाहते हैं कि इसमें कोई दो राय नहीं है कि किसानों की निचली श्रेणियां कर्जजाल में फंसी रहती है और इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि इस कर्ज का बड़ा हिस्सा सूदखोरों, व्यापारियों, दलालों द्वारा दिया जाता है। किंतु समस्या यह है कि वे यह मानकर चलते हैं कि सूदखोर पूंजी द्वारा शोषण किया जाना सामंतवाद का लक्षण है।

इसके विपरीत हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि सूदखोर पूंजी कोई सामंती या अर्द्ध–सामंती चीज नहीं है। सूदखोर पूंजी की मौजूदगी आम तौर पर पूंजीवाद के रहने तक बनी रहती है। सूदखोर पूंजी पूंजीवाद का अनिवार्य हिस्सा है और पूंजीवाद के रहते यह खत्म नहीं हो सकती।

हम यहां मार्क्स को उद्धृत कर रहे हैं ताकि यह समझा जा सके कि कैसे पूंजीवाद के तहत छोटे किसान सूदखोर के चंगुल में फंसते जाते हैं।

"देहाती लोग – कुल फ्रांसीसी आबादी के दो तिहाई भाग से अधिक – अधिकतर तथाकथित स्वतंत्र **भूस्वामी हैं।** पहली पीढ़ी ने, जिसे 1789 की क्रांति ने सामंती बोझ से मुफ्त में ही छुटकारा दिला दिया था, जमीन की कोई कीमत नहीं चुकायी थी। परन्तु आगे आने वाली पीढ़ियों को **जमीन की कीमत** के रूप में वह चुकाना पड़ा जो उनके अर्द्ध–दास

पूर्वजों को लगान; दशमांश बेगारी आदि के रूप में चुकाना पड़ता था। एक ओर आबादी जितनी अधिक बढ़ती गयी तथा दूसरी ओर जमीन का जितना अधिक बंटवारा होता चला गया, खण्डित भूमि का मूल्य उतना ही बढ़ता गया क्योंकि खेतों के आकार के छोटे होते जाने के साथ–साथ उनकी मांग में वृद्धि होती गयी। लेकिन किसान द्वारा **खरीदी** जाने वाली जमीन का – चाहे उसने वह प्रत्यक्ष रूप से खरीदी हो अथवा उसे अपने सहवारिसों की पूंजी के रूप में दर्ज करायी हो – मूल्य जिस अनुपात में बढ़ा, उसी अनुपात से **किसान की ऋणग्रस्तता** में भी यानी **गिरवीनामों** में लाजिमी तौर पर वृद्धि हुई। जमीन पर दिये जाने वाले कर्ज सम्बंधी दावे को **गिरवीनामा** कहा जाता है, यानी जमीन के मामले में गिरवीनामा। जिस प्रकार मध्ययुगीन जमीन पर विशेषाधिकार संचित होते चले गये, ठीक उसी तरह आज की छोटी–छोटी जोतों पर गिरवीनामे जमा होते थे। दूसरी ओर, जमीन के खण्डित होने की प्रणाली के अन्तर्गत जमीन अपने स्वामी के लिए विशुद्ध रूप से **उत्पादन का साधन** होती है। और जमीन जिस हिसाब से बांटी जाती है, उसी हिसाब से उसकी फलप्रदता भी घटती जाती है। जमीन पर मशीनों का उपयोग किया जाना, श्रम– विभाजन, जमीन की हालत सुधारने के लिए दलदल सुखाना, सिंचाई करने वाली नहरों का निर्माण करना, ऐसे ही अन्य प्रमुख पगों का उठाया जाना अधिकाधिक असंभव होता जाता है जबकि काश्त **अनुत्पादक लागत** भी उसी अनुपात से बढ़ती जाती है जिस अनुपात से स्वयं उत्पादन के उस साधन का बंटवारा बढ़ता जाता है। यह सब छोटी जोत के मालिक के पास पूंजी होने या न होने के बावजूद होता है। परन्तु बंटवारा जितना ज्यादा बढ़ता जाता है, दयनीय औजारों के साथ जमीन का छोटा टुकड़ा छोटी जोत वाले किसान की कुल पूंजी बनता जाता है, जमीन पर पूंजी–निवेश उतना ही घटता चला जाता है, कृषि विज्ञान की प्रगति का उपयोग करने के लिए किसान के पास जमीन, धन तथा शिक्षा का उतना ही अभाव होता जाता है तथा जीवन पर काश्त का उतना ही ह्रास होता चला जाता है तथा जमीन पर काश्त का उतना ही ह्रास होता चला जाता है। अन्ततः **शुद्ध आय** उसी अनुपात से घटती चली जाती है जिस अनुपात से **कुल खपत** बढ़ती जाती है, जिस अनुपात से किसान के पूरे परिवार को उसकी जोत के जरिये दूसरे काम धंधों से दूर रखा जाता है, जिसके सहारे तिस पर भी उसे गुजारा नहीं करने दिया जाता है।

"अतएव जिस मात्रा में आबादी और उसके साथ भूमि का बंटवारा बढ़ता है, उसी मात्रा में **उत्पादन का औजार–खेत–महंगा होता जाता है**, **उसकी उर्वरता** घटती जाती है, **कृषि का ह्रास होता जाता है तथा किसान के सिर पर कर्ज का बोझ लदता जाता है।** और जो वस्तु परिणाम थी, वह अपनी बारी में कारण बन जाती है। हर पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी पर और ज्यादा कर्ज लाद जाती है; हर नयी पीढ़ी अैर अधिक प्रतिकूल, अधिक तीक्ष्ण परिस्थितियों के अन्तर्गत काम शुरू करती है; एक बन्धक ऋण दूसरे बन्धक ऋण को जन्म देता है, और जब किसान के लिए **नये कर्ज** हासिल करने के वास्ते अपनी छोटी जोत

रेहन रखना सम्भव नहीं रह जाता, यानी फिर से बंधक रखना सम्भव नहीं होता, वह सीधे **सूदखोरों** के चंगुल में फंस जाता है और **सूद की दरें** हद से ज्यादा बढ़ जाती हैं।...

"तो हुआ यह कि फ्रांसीसी किसान जमीन को **बंधक** रखने के बदले दिये जाने वाले **सूद** के रूप में, और **बंधक के बिना सूदखोर से लिये गये** उधार के बदले दिये जाने वाले सूद के रूप में जमीन का लगान ही नहीं, औद्योगिक मुनाफा ही नहीं, संक्षेप में **पूरा का पूरा मुनाफा** ही नहीं बल्कि **मजूरी का एक हिस्सा** तक पूंजीपति को सौंप देता है, और इसलिए वह आयरिश पट्टेदार किसान के स्तर पर जा पहुंचता है, और यह सब **निजी स्वामी** का स्वांग रचते हुए।

"जनतंत्र ने जब फ्रांसीसी किसानों के सिर पर पुराने बोझ के साथ नये बोझ भी लाद दिये तो उनकी क्या हालत हुई होगी, इसे आसानी से समझा जा सकता है। यह देखा जा सकता है कि उनका शोषण औद्योगिक सर्वहारा से केवल **स्वरूप** में ही भिन्न है। शोंषक वही है यानी **पूंजी**। निजी तौर पर पूंजीपति बन्धकों और सूदखोरी के जरिये किसानों का शोषण करते हैं; पूंजीपति वर्ग **राजकीय करों** के जरिये कृषक वर्ग का शोषण करता है। सम्पत्ति पर किसान का हक वह ताबीज है जिसके जरिये पूंजी ने अब तक उस पर अपना जादू कर रखा था, वह बहाना था जिससे वह उसे औद्योगिक सर्वहारा के खिलाफ खड़ा किया करती थी। केवल पूंजी का पतन ही किसान को ऊपर उठा सकता है; केवल पूंजीवाद विरोधी, सर्वहारा सरकार ही उसकी आर्थिक मुफलिसी, उसके सामाजिक अधोपतन का अन्त कर सकती है।" (मार्क्स 'फ्रांस में वर्ग संघर्ष', मार्क्स–एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खण्ड–1 भाग–1, पृष्ठ–340–343, जोर मूल में)

और आगे,

"प्रथम क्रांति द्वारा किसानों के अर्द्ध–भूदास से कृषक भू–स्वामी बना दिये जाने के बाद नेपोलियन ने उन शर्तों की पुष्टि और नियमन किया था जिन पर वे फ्रांस की भूमि का, जो अभी–अभी उनके हाथ में आयी थी, बिना किसी की दखलंदाजी के भोग कर सकते थे और मिल्कियत की अपनी नौजवान वासना पूरी कर सकते थे। किन्तु आज जो चीज फ्रांस के किसानों की बर्बादी का कारण बनी हुई है, वह यह छोटी जोत, जमीन का टुकड़ों में बंटा होना, मिल्कियत का यही रूप है जिसे नेपोलियन ने फ्रांस में सुदृढ़ किया था। भौतिक अवस्थाओं ने ही सामंती किसान को छोटी जोत वाला और नेपोलियन को सम्राट बनाया था। इसके अवश्यम्भावी परिणाम, अर्थात कृषि के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए क्षय और कृषकों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता को प्रकट करने के लिए दो पीढ़ियां पर्याप्त सिद्ध हुई हैं। मिल्कियत का ''नेपोलियनी'' रूप जो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्रांस की ग्रामीण जनता की मुक्ति एवं संपन्नता की शर्त था, वही इस शताब्दी के दौरान उनके दासत्व और दरिद्रता का नियम बन गया है। और वह नियम ही नेपोलियाई धारणा में से वह प्रथम धारणा है जिसे दूसरे बोनापार्त को बहाल रखना है। यदि वह, किसानों के साथ, अब भी इस भ्रम में है कि उनकी बर्बादी का मूल इस छोटी जोत में नहीं, वरन् इसके बाहर, गौण

परिस्थितियों के प्रभाव में है, तो उसके प्रयोग उत्पादन सम्बन्धों के सम्पर्क में आने पर पानी के बुलबुले साबित होंगे।" (मार्क्स 'लुई बोनापार्त की अट्ठारहवीं ब्रूमेर', मार्क्स–एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खण्ड–1, भाग–2, पृष्ठ.236)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि कैसे छोटे पैमाने की मिल्कियत पहले गिरवीनामों के तहत और अन्ततः जब छोटी मिल्कियत को रेहन पर रख कर भी काम नहीं चलता है तो यह छोटी जोत का मालिक ऋणग्रस्तता के भंवर में फंसकर सूदखोर के चंगुल में फंसने को बाध्य होता है। और यह सूद की दरें इतनी ज्यादा होती हैं कि इस कर्ज को अदा करने के लिए छोटी जोत के किसान को सूद के रूप में जमीन का लगान ही नहीं वरन् अपनी मजूरी का भी एक हिस्सा सौंप देना पड़ता है। मार्क्स ने 'फ्रांस में वर्ग–संघर्ष' 1848–1850 में तब लिखा था जब फ्रांस छोटे–छोटे किसानों का देश बन गया था। जबकि प्रथम फ्रांसीसी क्रांति ने सामंती बंधनों से इन किसानों को मुक्त कर दिया था और वे स्वयं अपनी जमीन के मालिक थे। इस सबके बावजूद यह किसान ऋणग्रस्तता से, सूदखोरी से मुक्त नहीं हो सका। पूंजीवाद के तहत यह सपना पालना कि छोटा किसान कंगाली और दरिद्रता से, ऋणग्रस्तता से और बर्बादी से मुक्त हो जायेगा तो यह यूटोपिया मात्र होगा। मार्क्स कहते हैं कि छोटी जोतवालों की मुक्ति केवल पूंजी के पतन से ही सम्भव है और पूंजी का पतन ही किसान को ऊपर उठा सकता है। कृषि में पूंजीवादी विकास ने हमारे क्रांतिकारियों के आशानुरूप किसानों की स्थिति में सुधार नहीं किया और इसने किसानों को सूदखोरों, बैंकों के चंगुल में फंसा दिया तो यह पूंजीवादी प्रक्रिया का अवश्यम्भावी परिणाम है।

हम यहां यह भी कहना चाहते हैं कि सूदखोरी सिर्फ किसानों का शोषण ही नहीं करती है वरन् वस्तुगत तौर पर वह छोटी जोतों की बिक्री का भी परिणाम बनती है। निरंतर ऋणग्रस्तता और सूदखोरों के चंगुल में फंस जाने के कारण इन किसानों को अपनी जोतों को बेचना पड़ता है। और उन्हें सर्वहारा की पातों में शामिल होना पड़ता है। आर्थिक दृष्टिकोण से छोटी जोतों की बिक्री न सिर्फ भूमि के संकेन्द्रण में वाहक बन जाती है वरन सर्वहारा की संख्या में अभूतपूर्व तरीके से वृद्धि होती है। इस प्रकार यह प्रक्रिया पूंजीवादी विकास की गति को और ज्यादा त्वरित कर देती है तथा समाजवाद के लिए वस्तुगत परिस्थितियों को तैयार करने में सहायक बन जाती है। इसका आशय सूदखोरी पूंजी के शोषण को जायज ठहराना नहीं बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण से सूदखोरी पूंजी के चरित्र और उसकी भूमिका को रेखांकित करना भर है।

□□□